भारतीय ज्ञान परंपरा में राजनीति और राज्यः लोकतंत्र, नैतिकता और शासन का विश्लेषण

राजेश कुमार
शोधार्थी
ए.पी.सेन मेमोरियल गर्ल्स पी.जी. कॉलेज
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
ईमेलः rjsranjan93@gmail.com

प्रो0 रचना श्रीवास्तव
प्राचार्या
ए.पी.सेन मेमोरियल गर्ल्स पी.जी. कॉलेज
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
ईमेलः rachanaapsen@gmail.com

सारांश

भारतीय ज्ञान परंपरा में राजनीति और राज्य की अवधारणा को केवल शासन और सत्ता संचालन तक सीमित नहीं माना गया है बल्कि इसे नैतिक मूल्यों, धर्म, लोकहित तथा सामाजिक न्याय से गहराई से जोड़ा गया है। इस परंपरा में राज्य को एक ऐसी संस्था के रूप में देखा जाता है जिसका उद्देश्य समाज में न्यायपूर्ण व्यवस्था, संतुलन और सामूहिक कल्याण को स्थापित करना है। प्रस्तुत शोध का प्रमुख लक्ष्य भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित राजनीतिक विचारों का विश्लेषण करना है, विशेष रूप से लोकतंत्र, नैतिकता और शासन के संदर्भ में।

इस अध्ययन में गुणात्मक अनुसंधान पद्धति का प्रयोग किया गया है जिसमें मुख्य रूप से द्वितीयक स्रोतों जैसे प्राचीन ग्रंथ, दार्शनिक विचार, आधुनिक विद्वानों के लेखन तथा समकालीन शोध कार्यों का उपयोग किया गया है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय राजनीतिक चिंतन में 'धर्म' को शासन का आधार माना गया है जो शासक के आचरण और प्रजा के हितों को नियंत्रित करता है। साथ ही प्राचीन भारतीय गणराज्यों की परंपरा यह संकेत देती है कि लोकतांत्रिक मूल्यों की जड़ें भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही मौजूद रही हैं। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में राज्य का मुख्य उद्देश्य केवल प्रशासन चलाना नहीं, बल्कि लोककल्याण, सामाजिक समरसता और न्याय की स्थापना करना है। यहाँ नैतिकता को शासन का आवश्यक तत्व माना गया है जो सत्ता को उत्तरदायी और सीमित बनाता है। वर्तमान समय में जब शासन व्यवस्था पारदर्शिता और जवाबदेही जैसी चुनौतियों का सामना कर रही है तब भारतीय परंपरा के ये सिद्धांत अत्यंत उपयोगी और प्रासंगिक सिद्ध हो सकते हैं।

***मुख्य शब्द** : भारतीय ज्ञान परंपरा, राजनीति, राज्य, लोकतंत्र नैतिकता, शासन*

Reference to this paper should be made as follows:

Received: 05.03.26
Approved: 27.07.26

राजेश कुमार
प्रो0 रचना श्रीवास्तव

भारतीय ज्ञान परंपरा में राजनीति और राज्यः लोकतंत्र, नैतिकता और शासन का विश्लेषण

Vol. XVII, Sp. Issue Aug. 2026
Article No.26, Pg. 192-199
Similarity Check: 10%

Online available at
https://anubooks.com/special-issues?url=jgv-si-apsmgpc-lkn-2026

DOI: *https://doi.org/10.31995/jgv.2026.v17iSI08.026*

**This article has been peer-reviewed by the Review Committee of JGV.*

https://doi.org/10.31995/jgv.2026.v17iSI08.026

प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान परंपरा को विश्व की प्राचीन एवं समृद्ध बौद्धिक धरोहर के रूप में स्वीकार किया जाता है, जिसमें मानव जीवन के विविध आयामों का समग्र एवं संतुलित विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस परंपरा में राजनीति और राज्य की अवधारणाओं का विष्लेशण केवल सत्ता संचालन या प्रशासनिक संरचना तक सीमित न रहकर, नैतिकता, धर्म, लोककल्याण तथा सामाजिक समरसता के व्यापक संदर्भ में किया गया है। भारतीय चिंतन के अनुसार राजनीति का उद्देश्य मात्र शासन करना नहीं, बल्कि समाज में न्याय, संतुलन और सामूहिक कल्याण की स्थापना सुनिश्चित करना है।

प्राचीन भारतीय ग्रंथों एवं दार्शनिक परंपराओं में राज्य को एक नैतिक संस्था के रूप में परिकल्पित किया गया है, जिसका संचालन 'धर्म' के सिद्धांतों के अनुरूप होना अपेक्षित है। इस संदर्भ में शासक को केवल अधिकार संपन्न सत्ता के रूप में नहीं बल्कि उत्तरदायी एवं कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्व के रूप में देखा गया है जिसका दायित्व प्रजा की सुरक्षा, न्याय की स्थापना तथा लोकहित को प्राथमिकता देना है। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा में राजनीति और शासन की अवधारणाएँ नैतिक मूल्यों के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी हुई हैं। इसके विपरीत आधुनिक राजनीतिक विमर्श में राज्य की अवधारणा प्रायः शक्ति, नियंत्रण तथा विधिक–प्रशासनिक संरचनाओं के संदर्भ में व्याख्यायित की जाती है। यद्यपि यह दृष्टिकोण शासन के संस्थागत पक्ष को स्पष्ट करता है, तथापि इसमें नैतिकता और लोककल्याण के आयाम अपेक्षाकृत गौण हो जाते हैं। भारतीय परंपरा इस कमी को पूर्ण करते हुए शासन को नैतिक एवं उत्तरदायी बनाने पर बल देती है।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित राजनीति और राज्य की अवधारणाओं का समालोचनात्मक अध्ययन करना है विशेष रूप से लोकतंत्र, नैतिकता और शासन के संदर्भ में। यह अध्ययन इस बात की पड़ताल करता है कि भारतीय परंपरा में विकसित ये विचार समकालीन परिप्रेक्ष्य में किस प्रकार प्रासंगिक हैं तथा वर्तमान शासन प्रणाली को अधिक न्यायपूर्ण, पारदर्शी और जनोन्मुख बनाने में किस हद तक सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा में राजनीति और राज्य की अवधारणा

भारतीय ज्ञान परंपरा में राजनीति और राज्य की अवधारणा एक समग्र, नैतिक एवं दार्शनिक आधार पर विकसित हुई है जिसमें सामाजिक–संरचनात्मक संतुलन, नैतिक अनुशासन तथा लोककल्याण को केंद्रीय स्थान प्राप्त है। इस परंपरा में राजनीति को केवल सत्ता प्राप्ति या शासन प्रबंधन की तकनीक के रूप में नहीं बल्कि समाज में न्याय, समरसता और संतुलन स्थापित करने के साधन के रूप में देखा गया है। प्राचीन भारतीय चिंतन के अनुसार राजनीति का अंतिम उद्देश्य 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' की भावना को साकार करना है। अतः भारतीय दृष्टिकोण में राजनीति एक नैतिक कर्तव्यपरक व्यवस्था है जो 'धर्म' और 'ऋत' जैसे सार्वभौमिक सिद्धांतों पर आधारित है।

भारतीय चिंतन में 'धर्म' को राजनीतिक और सामाजिक जीवन का मूल नियामक तत्व माना गया है। यहाँ धर्म का अर्थ संकीर्ण धार्मिकता से नहीं बल्कि कर्तव्य, न्याय, नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व से है। वेदों और उपनिषदों में 'ऋत' को सार्वभौमिक व्यवस्था के रूप में स्वीकार किया गया है जो समाज और ब्रह्मांड दोनों में संतुलन बनाए रखता है। इसी आधार पर 'राजधर्म' की अवधारणा विकसित हुई जिसके अंतर्गत शासक का प्रमुख दायित्व न्याय की स्थापना, प्रजा की सुरक्षा तथा सामाजिक संतुलन का संरक्षण है। मनुस्मृति में राज्य को सामाजिक व्यवस्था का संरक्षक बताया गया है जबकि महाभारत (शांति पर्व) में यह प्रतिपादित किया गया है कि शासक के धर्म से विचलित होने पर समाज में अराजकता उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार भारतीय परंपरा में राज्य की वैधता शक्ति के बजाय नैतिकता पर आधारित मानी गई है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजनीति और राज्य का अत्यंत व्यवस्थित एवं यथार्थवादी विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। उनके 'सप्तांग सिद्धांत' के माध्यम से राज्य को एक संगठित एवं जैविक इकाई के रूप में समझाया गया है जिसमें प्रत्येक अंग की अपनी विशिष्ट भूमिका है। कौटिल्य का प्रसिद्ध सिद्धांत "प्रजा सुखे सुखं राज्ञः" यह स्पष्ट करता है कि

शासक का हित प्रजा के हित में निहित है। उनका दृष्टिकोण यथार्थवादी होने के साथ–साथ प्रशासनिक दक्षता, सुरक्षा और स्थिरता पर बल देता है। इसके साथ ही शुक्रनीति जैसे ग्रंथों में भी शासन के व्यावहारिक पक्ष जैसे अनुशासन, न्याय और प्रशासनिक क्षमता पर विशेष बल दिया गया है जो भारतीय राजनीतिक चिंतन की व्यावहारिकता को दर्शाता है।

बौद्ध और जैन परंपराओं ने राजनीति में नैतिकता, करुणा और अहिंसा के सिद्धांतों को प्रमुखता दी। गौतम बुद्ध ने 'धम्म' के माध्यम से शासन को करुणामूलक एवं न्यायपूर्ण बनाने का विचार प्रस्तुत किया, जबकि जैन दर्शन ने अहिंसा और आत्मसंयम को सर्वोच्च मूल्य के रूप में स्थापित किया। इन विचारधाराओं ने राजनीति को केवल शक्ति प्रयोग से मुक्त कर नैतिक आचरण से जोड़ने का प्रयास किया।

भारतीय ज्ञान परंपरा में राज्य की उत्पत्ति को 'मत्स्य न्याय' के माध्यम से समझाया गया है जो अराजकता की उस स्थिति को दर्शाता है जहाँ शक्तिशाली निर्बल का शोषण करता है। इस स्थिति से मुक्ति के लिए राज्य की स्थापना आवश्यक मानी गई। यह विचार पाश्चात्य चिंतक थॉमस हॉब्स के 'प्राकृतिक अवस्था'(state of nature) से साम्य रखता है किंतु जहाँ हॉब्स राज्य को मुख्यतः सुरक्षा केन्द्रित संस्था के रूप में देखते हैं, वहीं भारतीय दृष्टिकोण राज्य को नैतिक एवं सामाजिक व्यवस्था के संरक्षण का माध्यम मानता है।

भारतीय परंपरा में लोकतांत्रिक तत्वों की उपस्थिति भी उल्लेखनीय है। वैदिक काल की 'सभा' और 'समिति' जैसी संस्थाएँ जनसहभागिता को दर्शाती थीं जबकि वैशाली और लिच्छवि जैसे गणराज्य सामूहिक निर्णय प्रक्रिया पर आधारित थे। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय लोकतांत्रिक परंपरा केवल आधुनिक पाश्चात्य विचार नहीं है, बल्कि ऐतिहासिक रूप से विकसित एक सहभागितामूलक व्यवस्था रही है।

आधुनिक भारतीय चिंतन में महात्मा गांधी ने राजनीति को नैतिकता से जोड़ते हुए 'रामराज्य' की अवधारणा प्रस्तुत की जो सत्य, अहिंसा, विकेंद्रीकरण और ग्राम स्वराज पर आधारित आदर्श शासन का प्रतिमान है। श्री अरविंद ने राज्य को मानव के आध्यात्मिक विकास का साधन माना, जबकि अमर्त्य सेन ने न्याय, स्वतंत्रता और विकास को आधुनिक शासन के आवश्यक तत्वों के रूप में स्थापित किया। इस प्रकार प्राचीन और आधुनिक भारतीय चिंतन में एक निरंतरता दिखाई देती है, जिसमें नैतिकता और लोककल्याण को केंद्रीय स्थान प्राप्त है।

भारतीय राजनीतिक चिंतन में 'लोकसंग्रह' एक महत्वपूर्ण अवधारणा है जिसका आषय समाज के सभी वर्गों के हितों का समन्वय और संरक्षण करना है। यह आधुनिक की अवधारणा के 'कल्याणकारी राज्य' अनुरूप है जहाँ शासन का उद्देश्य समावेशी विकास और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना होता है।

आलोचनात्मक दृष्टि से भारतीय राजनीतिक चिंतन में आदर्शवाद और यथार्थवाद के मध्य संतुलन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। कौटिल्य का दृष्टिकोण यथार्थवादी है जो शक्ति, कूटनीति और प्रशासनिक नियंत्रण को आवश्यक मानता है, जबकि गांधी का दृष्टिकोण नैतिक आदर्शवाद पर आधारित है। यह द्वंद्व इस प्रश्न को जन्म देता है कि क्या राजनीति को पूर्णतः नैतिक बनाया जा सकता है, अथवा व्यावहारिक परिस्थितियों में शक्ति का प्रयोग अनिवार्य है।

हालाँकि, इस मॉडल की कुछ सीमाएँ भी हैं। 'धर्म' की बहुव्याख्यात्मक प्रकृति आधुनिक धर्मनिरपेक्ष एवं बहुलतावादी समाज में जटिलताएँ उत्पन्न कर सकती है। इसके अतिरिक्त प्राचीन व्यवस्था में सत्ता का केंद्रीकरण तथा सीमित जनसहभागिता जैसी प्रवृत्तियाँ भी देखी जाती हैं। यह भी विचारणीय है कि क्या यह मॉडल आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था में सभी वर्गों के अधिकारों की समान रूप से रक्षा कर सकता है अथवा इसे समकालीन संदर्भ में पुनर्व्याख्या की आवश्यकता है।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में भारतीय ज्ञान परंपरा के सिद्धांत अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। 'सुशासन', पारदर्शिता, जवाबदेही तथा समावेशी विकास जैसे आधुनिक सिद्धांत 'लोकसंग्रह' और 'राजधर्म' की अवधारणाओं से गहराई से जुड़े हुए हैं।

अंततः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा राजनीति और राज्य को केवल शक्ति केन्द्रित संरचना के रूप में नहीं, बल्कि एक नैतिक एवं उत्तरदायी सामाजिक व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत करती है। यह

https://doi.org/10.31995/jgv.2026.v17iSI08.026

दृष्टिकोण समकालीन षासन व्यवस्था के लिए एक संतुलित और वैकल्पिक वैचारिक आधार प्रदान करता है जहाँ नैतिकता और संस्थागत संरचना के समन्वय के माध्यम से न्यायपूर्ण, प्रभावी और जनोन्मुख शासन की स्थापना संभव है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में लोकतंत्र के तत्व

भारतीय ज्ञान परंपरा में लोकतंत्र की अवधारणा आधुनिक पश्चिमी लोकतांत्रिक परिभाषाओं के समान प्रत्यक्ष रूप से विकसित नहीं हुई थी, फिर भी प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन और शासन व्यवस्थाओं में जनभागीदारी, परामर्शात्मक निर्णय प्रक्रिया, उत्तरदायित्व और लोककल्याण के अनेक सिद्धांत स्पष्ट रूप से विद्यमान थे। भारतीय दृष्टिकोण में शासन केवल शासक की शक्ति या व्यक्तिगत अधिकार पर आधारित नहीं था, बल्कि इसे समाज की सामूहिक सहमति, नैतिक उत्तरदायित्व और प्रजा के कल्याण से जुड़े संस्थागत ढांचे के रूप में देखा गया। इस दृष्टि से भारतीय ज्ञान परंपरा में लोकतांत्रिक तत्वों का आधार परामर्श, सहभागिता, उत्तरदायित्व और लोककल्याण जैसे नैतिक और संस्थागत सिद्धांतों में निहित है।

लोकतांत्रिक तत्वों की प्रारंभिक झलक वैदिक साहित्य में देखने को मिलती है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में सभा और समिति जैसी संस्थाओं का उल्लेख मिलता है, जिन्हें उस समय की महत्वपूर्ण राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओं के रूप में देखा गया। विद्वानों के अनुसार, सभा अपेक्षाकृत प्रतिष्ठित और अनुभवी व्यक्तियों की परिषद थी, जबकि समिति व्यापक जनसमुदाय का प्रतिनिधित्व करती थी। इन संस्थाओं के माध्यम से समाज और शासन से संबंधित महत्वपूर्ण विषयों पर विचार–विमर्श और निर्णय किए जाते थे। ऋग्वेद में वर्णित "समानी व आकूतिः समाना ह्दयानि वः। समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति" का उल्लेख सामूहिक विचार और सहमति की भावना को व्यक्त करता है। यह स्पष्ट करता है कि वैदिक समाज में राजनीतिक निर्णय सामूहिक परामर्श पर आधारित थे जो प्रारंभिक जनभागीदारी का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

इसके अतिरिक्त, प्राचीन भारत में गणराज्य परंपरा (गंणतांत्रिक स्वरूप) भी लोकतांत्रिक तत्वों की महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति रही। बौद्ध और जैन ग्रंथों में लिच्छवि, शाक्य, मल्ल और वज्जि संघ जैसी गणराज्य व्यवस्थाओं का उल्लेख मिलता है। इन गणराज्यों में शासन किसी एक व्यक्ति के अधीन नहीं था, बल्कि परिषद या सभा के माध्यम से संचालित होता था। निर्णय सामूहिक विचार–विमर्श के आधार पर लिए जाते थे और प्रशासन में अनेक सदस्यों की भागीदारी सुनिश्चित की जाती थी। बौद्ध ग्रंथ महापरिनिब्बान सुत्त में वज्जि संघ की शासन व्यवस्था का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि जब तक वे नियमित रूप से सभा आयोजित करेंगे, सामूहिक निर्णय लेंगे और नियमों का पालन करेंगे, तब तक उनका राज्य सुदृढ़ रहेगा। इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में संस्थागत लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं की गहरी परंपरा रही।

भारतीय राजनीतिक चिंतन में लोकतांत्रिक तत्वों का एक प्रमुख पहलू परामर्शात्मक शासन (Consultative Governance) की अवधारणा है। प्राचीन ग्रंथों में शासक के लिए यह निर्देश दिया गया है कि वह शासन संबंधी निर्णय लेते समय योग्य मंत्रियों, विद्वानों और वरिष्ठ व्यक्तियों से परामर्श करे। कौटिल्य का अर्थशास्त्र इस दृष्टिकोण का प्रमुख प्रमाण है। कौटिल्य के अनुसार राजा को राज्य संचालन में मंत्रीपरिषद की सहायता और सामूहिक निर्णय–प्रक्रिया अपनानी चाहिए। उनके विचार में, शासन की सफलता केवल शासक की व्यक्तिगत क्षमता पर नहीं बल्कि सामूहिक बुद्धि और संस्थागत परामर्श पर निर्भर करती है। यह दृष्टिकोण आधुनिक लोकतांत्रिक प्रशासन में विशेषज्ञों की भागीदारी और नीति–निर्माण में परामर्श के सिद्धांत से समानता रखता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में शासन की वैधता प्रजा के हित और कल्याण से जुड़ी रही है। महाभारत के शांति पर्व में उल्लेख है कि यदि शासक न्याय और धर्म के अनुसार शासन नहीं करता तो उसका शासन वैध नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार कौटिल्य ने स्पष्ट किया है कि शासक का सुख और हित प्रजा के सुख और हित में निहित है ("प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।") यह कथन स्पष्ट करता है कि राज्य की वैधता और स्थिरता प्रजा के कल्याण

पर निर्भर करती है। शासन केवल सत्ता का प्रयोग नहीं है बल्कि यह एक नैतिक दायित्व है जो प्रजा के हितों की रक्षा करता है। इस दृष्टिकोण से भारतीय राजनीतिक परंपरा में लोकतंत्र केवल राजनीतिक अधिकार का मामला नहीं, बल्कि नैतिक उत्तरदायित्व, सामाजिक सहभागिता और न्याय पर आधारित था।

इसके अतिरिक्त, भारतीय ज्ञान परंपरा में शासन में सामूहिक नेतृत्व और उत्तरदायित्व पर बल दिया गया। प्राचीन ग्रंथों में बताया गया है कि राजा के निर्णयों में मंत्री, सलाहकार और समुदाय का विचार शामिल होना चाहिए। इससे शासन अधिक न्यायपूर्ण और जवाबदेह बनता था। इस प्रक्रिया में सत्ता का केंद्रीकरण नहीं बल्कि वितरण और पारदर्शिता सुनिश्चित होती थी। अतः भारतीय ज्ञान परंपरा में लोकतंत्र के तत्व प्रत्यक्ष रूप से आधुनिक लोकतांत्रिक संस्थाओं के रूप में विकसित नहीं हुए थे, किंतु प्राचीन भारतीय समाज में जनभागीदारी, परामर्शात्मक निर्णय–प्रक्रिया, सामूहिक नेतृत्व और लोककल्याण जैसे सिद्धांत स्पष्ट रूप से विद्यमान थे। ये तत्व यह दर्शाते हैं कि भारतीय राजनीतिक चिंतन में शासन व्यवस्था को नैतिकता, उत्तरदायित्व और सामाजिक सहभागिता के आधार पर विकसित करने का प्रयास किया गया था। इस दृष्टि से भारतीय ज्ञान परंपरा के लोकतांत्रिक तत्व आधुनिक लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की वैचारिक समझ को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करते हैं।

समकालीन संदर्भ में भी इन सिद्धांतों की प्रासंगिकता अत्यधिक है। जब आज के लोकतंत्र में पारदर्शिता, जवाबदेही और जनभागीदारी की कमी महसूस की जा रही है, तब भारतीय ज्ञान परंपरा के लोकतांत्रिक तत्व नीति निर्माण, प्रशासनिक सुधार और सुशासन (Good Governance) के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं। विशेष रूप से, परामर्शात्मक निर्णय–प्रक्रिया और प्रजा कल्याण पर आधारित शासन आज भी प्रशासनिक और राजनीतिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

भारतीय राजनीतिक चिंतन में नैतिकता

भारतीय राजनीतिक चिंतन में नैतिकता (Morality) को शासन और राजनीति की मूल आधारशिला के रूप में स्वीकार किया गया है। प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में राजनीति केवल सत्ता प्राप्ति या शासन संचालन की प्रक्रिया नहीं थी बल्कि इसे समाज में धर्म, न्याय और लोककल्याण की स्थापना करने वाली नैतिक और दायित्वपूर्ण व्यवस्था के रूप में देखा गया। इस दृष्टिकोण के अनुसार राज्य की स्थिरता और शासन की वैधता का आधार नैतिक आचरण और धर्मसम्मत शासन है। इसलिए भारतीय राजनीतिक चिंतन में राजनीति, राज्य और नैतिकता के बीच गहरा और अविभाज्य संबंध स्थापित किया गया है।

भारतीय चिंतन में नैतिकता का मूल आधार धर्म की अवधारणा है। यहाँ धर्म का अर्थ केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं है, बल्कि सत्य, न्याय, कर्तव्य और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे व्यापक नैतिक मूल्यों को भी शामिल करता है। महाभारत में धर्म को सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था का आधार माना गया है। शांति पर्व में भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को दिए गए उपदेशों में यह स्पष्ट किया गया है कि राजा का प्रमुख दायित्व धर्म के अनुसार शासन करना है, क्योंकि धर्म ही राज्य और समाज को स्थिरता प्रदान करता है। यदि शासक धर्म से विचलित हो जाता है, तो राज्य में अन्याय, अराजकता और असंतोष उत्पन्न हो सकते हैं। इस प्रकार महाभारत में शासन व्यवस्था को नैतिकता और न्याय के सिद्धांतों से अभिन्न रूप से जोड़ा गया है।

भारतीय राजनीतिक चिंतन में नैतिकता की अभिव्यक्ति राजधर्म की अवधारणा में भी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। राजधर्म का तात्पर्य है कि शासक अपने अधिकारों का प्रयोग धर्म और न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप करे तथा प्रजा के हितों की रक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता दे। रामायण में वर्णित रामराज्य राजधर्म का आदर्श रूप है, जहाँ शासन व्यवस्था का संचालन न्याय, समानता और लोककल्याण के सिद्धांतों पर आधारित था। रामराज्य में शासक को नैतिक आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो अपने व्यक्तिगत हितों से ऊपर उठकर प्रजा के कल्याण के लिए कार्य करता है।

कौटिल्य के विचार भी नैतिकता और शासन के संबंध को स्पष्ट करते हैं। यद्यपि कौटिल्य ने शासन के यथार्थवादी और व्यावहारिक पक्षों पर बल दिया, फिर भी उन्होंने शासक को प्रजा के प्रति उत्तरदायी और लोककल्याण के लिए समर्पित माना। अर्थशास्त्र में कौटिल्य लिखते हैं (प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।) अर्थात् राजा का सुख प्रजा के सुख में और राजा का हित प्रजा के हित में निहित है। यह दृष्टिकोण भारतीय राजनीतिक चिंतन में नैतिक उत्तरदायित्व और लोककल्याण की अवधारणा को मजबूत करता है।

इसी प्रकार मनुस्मृति में भी शासक के नैतिक आचरण और न्यायपूर्ण शासन पर विशेष बल दिया गया है। मनु के अनुसार राजा को सत्यनिष्ठ, निष्पक्ष और धर्मपरायण होना चाहिए। उसका प्रमुख दायित्व समाज में न्याय और व्यवस्था की स्थापना करना तथा प्रजा के हितों की रक्षा करना है। यदि शासक न्याय और धर्म के सिद्धांतों का पालन नहीं करता तो समाज में अराजकता और असंतोष उत्पन्न हो सकता है।

भारतीय राजनीतिक चिंतन में लोककल्याण (Public Welfare) की अवधारणा भी नैतिकता का महत्वपूर्ण आयाम है। प्राचीन ग्रंथों में स्पष्ट किया गया है कि राज्य का अंतिम उद्देश्य प्रजा का कल्याण सुनिश्चित करना है। शासक को अपने व्यक्तिगत हितों से ऊपर उठकर समाज के व्यापक हितों को प्राथमिकता देनी चाहिए।

इस प्रकार भारतीय राजनीतिक चिंतन में नैतिकता शासन व्यवस्था की आधारशिला के रूप में स्थापित है। धर्म, राजधर्म, न्याय और लोककल्याण जैसे सिद्धांत राजनीति को नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व के साथ जोड़ते हैं। समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि भारतीय राजनीतिक परंपरा में राजनीति का उद्देश्य केवल सत्ता प्राप्त करना नहीं बल्कि समाज में न्याय, संतुलन और लोकमंगल की स्थापना करना है। यही कारण है कि भारतीय ज्ञान परंपरा आधुनिक लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के लिए भी एक महत्वपूर्ण नैतिक और वैचारिक आधार प्रदान करती है।

प्रशासन और शासन व्यवस्था

भारतीय ज्ञान परंपरा में प्रशासन और शासन व्यवस्था को राज्य की स्थिरता, सामाजिक संतुलन और लोककल्याण का प्रमुख साधन माना गया है। प्राचीन राजनीतिक चिंतन में शासन केवल सत्ता के प्रयोग की प्रक्रिया नहीं था, बल्कि यह सामाजिक न्याय, नैतिकता और प्रजा के कल्याण को सुनिश्चित करने वाली व्यवस्था थी। वैदिक साहित्य, धर्मशास्त्र, महाकाव्य तथा प्राचीन राजनीतिक ग्रंथों में प्रशासन और शासन की संरचना का विस्तृत वर्णन मिलता है।

वैदिक काल में सभा और समिति जैसी संस्थाएँ शासन में परामर्श और जनसहभागिता की भूमिका निभाती थीं। यह व्यवस्था शासन को अधिक उत्तरदायी और संतुलित बनाने में सहायक थी।

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में प्रशासनिक व्यवस्था का सबसे व्यवस्थित स्वरूप कौटिल्य के अर्थशास्त्र में देखने को मिलता है। कौटिल्य ने राज्य के प्रशासनिक ढाँचे को अत्यंत संगठित और कार्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया। उनके अनुसार राज्य संचालन के लिए विभिन्न विभागों और अधिकारियों की नियुक्ति आवश्यक थी जो शासन के अलग–अलग कार्यों को प्रभावी ढंग से संपन्न करें। प्रशासनिक अधिकारियों के चयन में योग्यता, निष्ठा और नैतिकता को महत्वपूर्ण माना गया।

भारतीय ज्ञान परंपरा में प्रशासन का मुख्य उद्देश्य प्रजा की सुरक्षा, न्याय की स्थापना और सामाजिक–आर्थिक समृद्धि सुनिश्चित करना था। प्रशासनिक तंत्र राज्य के विभिन्न कार्यों जैसे– कर संग्रह, कानून व्यवस्था, रक्षा, न्याय और लोककल्याण को व्यवस्थित रूप से संचालित करता था। प्रशासन तभी प्रभावी हो सकता है जब वह न्याय, धर्म और लोककल्याण के सिद्धांतों पर आधारित हो।

इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा में प्रशासन और शासन व्यवस्था का स्वरूप संगठित, उत्तरदायी और लोककल्याणकारी रहा है। यह दृष्टिकोण आधुनिक प्रशासनिक सिद्धांतों जैसे– सुशासन, पारदर्शिता और जवाबदेही के साथ भी सामंजस्य स्थापित करता है।

आधुनिक लोकतंत्र में भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रासंगिकता

आधुनिक लोकतंत्र समानता, जनसहभागिता, जवाबदेही और लोककल्याण पर आधारित है। यद्यपि इसका संस्थागत विकास पश्चिमी विचारों से हुआ, फिर भी भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित नैतिकता, धर्म, न्याय और लोककल्याण के सिद्धांत आधुनिक लोकतंत्र के साथ गहरा सामंजस्य रखते हैं।

प्राचीन परंपरा में शासन को जनहित और लोकमंगल के उद्देश्य से संचालित करने की अवधारणा प्रमुख रही। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में शासन की प्रभावशीलता, प्रशासनिक दक्षता, पारदर्शिता और प्रजा के कल्याण को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया। उनका कथन 'प्रजा के सुख में ही राजा का सुख निहित है' आधुनिक लोकतंत्र में सुशासन की भावना के समान है।

भारतीय राजनीतिक चिंतन में नैतिक राजनीति पर बल दिया गया है। शासक को अपने व्यक्तिगत हितों से ऊपर उठकर समाज के व्यापक हितों के लिए कार्य करना चाहिए। आधुनिक लोकतंत्र में भी राजनीतिक नेतृत्व से यही अपेक्षा की जाती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा की एक अन्य विशेषता लोककल्याणकारी राज्य (Welfare State) की अवधारणा है। प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार में राज्य का अंतिम उद्देश्य प्रजा के कल्याण को सुनिश्चित करना था। आधुनिक लोकतंत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा और आर्थिक विकास के माध्यम से यही लक्ष्य प्राप्त किया जाता है।

इसके अतिरिक्त, भारतीय ज्ञान परंपरा लोकतांत्रिक संस्थाओं के सुदृढ़ीकरण के लिए वैचारिक आधार प्रदान करती है। प्राचीन काल में मंत्रिपरिषद, सभा जैसी संस्थाएँ शासन में परामर्श और संतुलन की भूमिका निभाती थीं। आधुनिक लोकतंत्र में संसद, न्यायपालिका और प्रशासनिक संस्थाएँ इसी प्रकार शासन व्यवस्था को संतुलित और उत्तरदायी बनाती हैं।

निष्कर्ष

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में राजनीति और राज्य की अवधारणा नैतिकता, धर्म और लोककल्याण पर आधारित है। प्राचीन राजनीतिक चिंतन में शासन का उद्देश्य केवल सत्ता का संचालन नहीं बल्कि सामाजिक न्याय, नैतिक संतुलन और प्रजा के कल्याण की स्थापना था।

भारतीय ज्ञान परंपरा राजनीति को नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व के साथ जोड़ती है। धर्म, राजधर्म,दंडनीति और लोककल्याण जैसे सिद्धांत यह दर्शाते हैं कि राज्य की वैधता और स्थिरता का आधार न्यायपूर्ण और उत्तरदायी शासन है। आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था में भी भारतीय ज्ञान परंपरा अत्यंत प्रासंगिक है। सुशासन, नैतिक राजनीति और लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणाएँ प्राचीन भारतीय चिंतन से गहराई से जुड़ी हुई हैं। इसलिए भारतीय ज्ञान परंपरा आधुनिक शासन व्यवस्था को अधिक नैतिक, उत्तरदायी और जनोन्मुख बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है।

संदर्भ

1. मिश्रा, एस. (2020)– "भारती; ज्ञान परंपरा और सुशासन की अवधारणा।" जर्नल ऑफ इंडियन पॉलिटिकल थॉट, 12(1), पृ0सं0–55–70।
2. शर्मा, आर. एस. (2005)– प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार और संस्थाएँ। दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास।
3. सिंह, आर. (2018)– "प्राचीन भारती; राजनीतिक विचार और आधुनिक संदर्भ।" भारती; राजनीति विज्ञान समीक्षा, 45(2), पृ0सं0–112–130।
4. रोमिला थापर (2002). प्रारंभिक भारतः उद्भव से 1300 ईस्वी तक– कैलिफोर्नियाः यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।

https://doi.org/10.31995/jgv.2026.v17iSI08.026

5. सुब्रत के. मित्रा (2012). भारत की राजनीतिः संरचना, प्रक्रिया और नीति. लंदनः रूटलेज।
6. शर्मा, पार्थ। (2024). "भारती; ज्ञान प्रणाली और भारतीय राजनीतिक दर्शनः समकालीन दृष्टिकोण।" जर्नल ऑफ इन्फॉर्मेटिक्स एजुकेशन एण्ड रिसर्च, 4(3)।
7. मिश्रा, एस. (2020). "भारती; ज्ञान परंपरा और सुशासन की अवधारणा।" जर्नल ऑफ इंडियन पॉलिटिकल थॉट, 12(1), पृ0सं0–**55–70**।
8. पटनायक, औंकार. (2026). "राजधर्म से संवैधानिक नैतिकता तकः भारतीय लोकतांत्रिक परंपरा का ऐतिहासिक विकास।" इंटरनेशनल जर्नल फॉर मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च।